

अंतरा

ऋषियों की तपोभूमि चंदौली है प्राचीन काशी



पूर्वी उत्तर प्रदेश की पावन भूमि पर स्थित चंदौली जनपद को सामान्यतः आधुनिक प्रशासनिक इकाई के रूप में देखा जाता है, किंतु इतिहास, पुरातत्व और आध्यात्मिक परंपराओं की दृष्टि से यह क्षेत्र प्राचीन काशी परंपरा का अविभाज्य अंग रहा है। काशी केवल वर्तमान वाराणसी तक सीमित नहीं रही, अपितु प्राचीन काल में इसका सांस्कृतिक-धार्मिक विस्तार चंदौली, मिर्जापुर, सोनभद्र और गाजीपुर तक फैला हुआ था। मां गंगा ने संगम नगरी प्रयागराज के पश्चात विन्ध्य पर्वत को छूने हुए वाराणसी के दक्षिण दिशा से बाबा विश्वनाथ मंदिर वाले भाग काशी को अपनी गोद में लिया, तो तपस्थली वाले भाग प्राचीन काशी चंदौली को भी गाजीपुर के पूर्व ही उत्तर दिशा से काशी के दोनों संपूर्ण भाग को सामान्य रूप से गौरवान्वित किया है। प्राचीन काशी चंदौली के भौगोलिक मानचित्र पर ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व के रसूलपुर से वैराठ तक आज भी विद्यमान है। इसकी महत्ता पौराणिक ग्रंथों में विधिवत वर्णित है। यहां ऋषियों की तपोभूमि, शिव-शक्ति उपासना और वैदिक संस्कृति की सशक्त छाप आज भी विद्यमान है। चंदौली का नाम चंद्रसाह नामक बरहौलिया राजपूत के नाम पर बताया जाता है, जिन्होंने यहां एक किला बनवाया था।

नगर की प्राचीनता

यह पूरा जिला काशी राज्य के अधिकार में था। इस जिले से संबंधित अनेक कथाओं के अतिरिक्त यहां प्राचीनकाल की मूल्यवान घरोहरों के प्रमाण पाए गए हैं। ईंट आदि के अवशेष जहां-तहां बिखरे पड़े हैं, अनेक तालाब और कुंड हैं। एक बहुत प्राचीन क्षेत्र बलुआ है, जो सकलडीहा तहसील से 22 किलोमीटर दक्षिण गंगा नदी के तट पर स्थित है। यहां हिंदुओं का एक धार्मिक मेला हर वर्ष माघ महीने में मौनी अमावस्या के दिन लगता है। यह पश्चिम वाहिनी मेला के नाम से जाना जाता है। सकलडीहा तहसील का गांव एक महान अघोरेश्वर संत की नाराम की जन्मभूमि है। वे वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, इनका शिव और शक्ति में गहरा विश्वास था। हेतमपुर गांव एक प्राचीन स्थान है, यहां एक किला है, जिसे 'हेतमपुर किला' कहा जाता है। कहा जाता है कि इसको 14 वीं-15 वीं शताब्दी के बीच राजा टोडरमल के द्वारा निर्मित कराया गया था, जो शेरशाह सूरी के राज्य में निर्माण पर्यवेक्षक थे। मुगलकाल के बाद जगदीरार हेतमखाने ने इस पर कब्जा कर लिया। चंदौली के राजदरि, देवदरी, चन्द्रप्रभा क्षेत्र तथा आसपास की पहाड़ियों में शैलचित्र, पत्थर के औजार और गुफाएं मिली हैं। ये प्रमाण बताते हैं कि यहां आदिम मानव निवास करता था और यह क्षेत्र जीवन, साधना और प्रकृति-पूजा का केंद्र था। चंदौली का चौसठिंदा देवी क्षेत्र, चन्द्रप्रभा वन्य क्षेत्र और आसपास के स्थल बौद्ध काल में भी महत्वपूर्ण रहे। सभी स्थित सारनाथ से इसका सीधा सांस्कृतिक संबंध रहा। बौद्ध भिक्षु ध्यान और साधना हेतु इन वनों में निवास करते थे।



गौरीशंकर वैश्य विनय लखनऊ



मोक्षदायिनी नगरी

'काश्यां मरणान्मुक्तिः' काशी की यह आध्यात्मिक ऊर्जा केवल एक नगर तक सीमित नहीं थी। चंदौली उस ऊर्जा का वनाचली और तपस्वी स्वरूप रहा। चंदौली क्षेत्र में शिवलिंगों, देवी मंदिरों और शक्ति स्थलों की प्राचीन परंपरा है। यहां की लोक मान्यता के अनुसार भगवान शिव ने काशी क्षेत्र की रक्षा हेतु इन वनों में विचरण किया। चंदौली में स्थित चन्द्रप्रभा नदी और वन क्षेत्र को अत्यंत पवित्र चन्द्रप्रभा तीर्थ के माना जाता है। यहां स्थित जलपात और कुंडों को प्राचीन काल में तपस्या और स्नान के लिए श्रेष्ठ माना गया। यह स्थान केवल प्राकृतिक सौंदर्य ही नहीं, अपितु आध्यात्मिक शांति का केंद्र रहा है।

विश्वामित्र की कर्मस्थली

चंदौली भूभाग पर हजारों वर्षों से अब तक ऋषि-महर्षियों के तप करने का प्रमाण उपलब्ध है। गंगा नदी के तटों से लेकर वाणगंगा और चकिया नौगढ़ के जंगलों तक विस्तृत यह क्षेत्र सभी दृष्टिकोण से सुरक्षित और शांतिप्रिय रहा है, जहां सैकड़ों वर्षों तक एक मुद्रा में बैठे ऋषि-मुनियों ने साधना की। प्राचीन काशी में ही महर्षि याज्ञवल्क्य को चकिया के पटारी तथा जंगली क्षेत्र की शांति खींच लाई थी। जहां उन्होंने एक पैर पर खड़े होकर सैकड़ों वर्ष तपस्या किया। भगवान शंकर से नाराज होकर महर्षि वेदव्यास ने प्राचीन

काशी (चंदौली) के साहूपुरी (व्यासनगर) में आए, जहां अपना क्रोध - त्याग किया और वहीं साधना करने लगे। महर्षि विश्वामित्र ने अपनी कर्मस्थली और लीलास्थली नौगढ़ क्षेत्र को बनाया, इसका प्रमाण कर्मनाशा के रूप में विस्तृत है। महाराज दुष्यंत और शकुंतला की प्रेम कहानी इसी भूभाग से जुड़ी है, जहां मगरौर में महाराज भरत के जन्म का प्रमाण मिलता है, इनके नाम पर ही इस देश का नाम भारत पड़ा। विद्वानों का यह भी मानना है कि इस समृद्ध क्षेत्र में कभी है हयवंशी क्षत्रियों के संहार हेतु यमदग्नि-पुत्र परशुराम ने अशांति फैलायी थी, जिसका प्रमाण रायल ताल का माना जाता है।



लोक आस्थाएं एवं परंपराएं

चंदौली की ग्राम्य संस्कृति में आज भी काशी की परंपराएं जीवित हैं। श्रावण मास की शिव पूजा, कार्तिक स्नान, लोक देवी-देवताओं की आराधना, संस्कारों में वैदिक मंत्रोच्चार यह सब दर्शाता है कि चंदौली केवल भौगोलिक इकाई नहीं, अपितु यहां के लोक जीवन में आध्यात्मिक निरंतरता व्याप्त है। चंदौली की लोक संस्कृति में काशी की छवि स्पष्ट दिखाई देती है। यहां की भोजपुरी-काशी बोली में राम, शिव, गंगा और काशी से जुड़े असंख्य लोकगीत प्रचलित हैं। विवाह, जन्म और पर्वों पर गाए जाने वाले गीतों में काशी को पुण्य स्थल के रूप में स्मरण किया जाता है। यहां के शिवरात्रि मेले, नवरात्र उत्सव, कार्तिक पूर्णिमा आदि आयोजनों में काशी परंपरा की झलक मिलती है।

वर्तमान स्वरूप

आज का चंदौली जनपद आध्यात्मिक विरासत और आधुनिक विकास के संतुलन का उदाहरण है। वाराणसी से 20 मई, 1997 में अलग होकर चंदौली जनपद बना। यह उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित है, जो वाराणसी से 30 किलोमीटर दूरी पर है। यह जनपद वाराणसी, मिर्जापुर, सोनभद्र से घिरा हुआ है, जो इसके ऐतिहासिक-धार्मिक महत्व को और पुष्ट करता है। चंदौली को उत्तर प्रदेश का 'धान का कटोरा' कहा जाता है। उपजाऊ भूमि, नहर प्रणाली, कर्मनाशा और चन्द्रप्रभा के जल से परिपूरित यह क्षेत्र कृषि के साथ-साथ अब औद्योगिक और व्यापारिक गतिविधियों की ओर भी बढ़ रहा है। यहां पर्यटन की अपार संभावनाएं हैं। यहां चन्द्रप्रभा वन्यजीव अभयारण्य, जलपात, ऐतिहासिक स्थल और अनेक धार्मिक स्थल पर्यटकों के आकर्षण के केंद्र हैं। यदि इनका समुचित विकास किया जाए, तो चंदौली आध्यात्मिक-पर्यटन मानचित्र पर विशेष स्थान प्राप्त कर सकता है। चंदौली और काशी का पुराना अटूट संबंध है। जहां काशी (वाराणसी) ज्ञान, मोक्ष और चेतना का केंद्र रही, वहीं चंदौली उसका वन्य, तपस्वी और प्राकृतिक विस्तार क्षेत्र कहा जा सकता है। चंदौली ने काशी की आत्मा को अपने वनों, नदियों, लोक जीवन और आस्थाओं में सुरक्षित रखा है। आज आवश्यकता है कि इस विरासत को पहचाना जाए, संरक्षित किया जाए और आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाया जाए। चंदौली केवल एक जनपद नहीं, अपितु यह प्राचीन काशी की जीवित स्मृति है।

पौराणिक कथा

कर्ण और वृषकेतु

वेदव्यास लिखित महाभारत में कर्ण की कथा अत्यंत मार्मिक और रहस्यमयी रूप में वर्णित मिलती है। विवाह से पूर्व ऋषि दुर्वास का वरदान के प्रभाव से कुंती को एक पुत्र प्राप्त हुआ, जिसे समाज के भय से उन्होंने नदी में बहा दिया। यह बालक सूर्यपुत्र कर्ण था। नदी की धारा में बहते हुए उस शिशु को सारथी अधिरथ और उनकी पत्नी ने अपनाकर उसका पालन-पोषण किया। आगे चलकर हस्तिनापुर के महाराज धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन ने कर्ण की प्रतिभा को पहचानते हुए उसे अपना मित्र बनाया और अंग देश का राजा बनाया। कर्ण के जीवन की सबसे बड़ी विडंबना यही रही कि न तो वह स्वयं अपने जन्म का सत्य जान पाया और न ही पांडव और कौरव इस रहस्य से परिचित थे कि वह कुंती का ज्येष्ठ पुत्र है। कर्ण की दो पत्नियां थीं-ऋषाली और सुप्रिया। ऋषाली सूत कुल की थीं। उनसे कर्ण को नौ पुत्र प्राप्त हुए। महाभारत युद्ध के दौरान कर्ण के आठ पुत्र- वृषसेन, चित्रसेन, सत्यसेन, सुसेन, शत्रुंजय, प्रसेन, बनसेन और अन्य अर्जुन, भीम तथा सात्यकि जैसे महारथियों के हाथों वीरगति को प्राप्त हुए। केवल सबसे छोटा पुत्र वृषकेतु, जो उस समय अल्पायु था, भीष्म पितामह के आदेश से युद्ध में शामिल नहीं हुआ।



शिववरण चौहान लेखक



आनंद अखाड़ा के नागा बाबा अलखिया के नाम पर पड़ा अलखनाथ मंदिर नाम किला रोड स्थित 84 बीघे में फैला बेहद प्राचीन है। मुगलों के आक्रमण के समय धर्मरक्षा का केंद्र था यह मंदिर। बताते हैं कि वट वृक्ष के बीचो-बीच शिवलिंग स्वयं प्रकट हुए थे। मुगल शासकों के आक्रमण के समय में मंदिर व धर्म की साख बचाने के लिए आनंद अखाड़ा ने नागा बाबा अलखिया को यहां भेजा था। उन्होंने न सिर्फ मंदिर परिसर मुगल आक्रांताओं से सुरक्षित रखा, बल्कि गुरु-शिष्य परंपरा शुरू कर अलखनाथ मंदिर को आने वाली पीढ़ियों के लिए संरक्षित कर दिया। बाबा अलखिया ने यहां पर रहकर तपस्या की फिर मंदिर की स्थापना भी कराई।



- फीचर डेस्क

अलखनाथ मंदिर: भाव ही भक्ति



अलखनाथ मंदिर में वट वृक्ष के बीचो-बीच प्रकट हुए शिवलिंग के दर्शन के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। मंदिर के पुजारी बताते हैं कि यहां पर भक्त जिस भाव से आते हैं भोलेनाथ भी उसकी इच्छा उसी भाव से पूरी करते हैं। अलखिया बाबा के बाद 1008 सूरज गिरि, नागा बाबा दत्त गिरि और कमल गिरि ने मंदिर की गद्दी संभाली फिर देव गिरि महाराज 24 वर्ष तक गद्दी पर विराजमान रहे। धर्म गिरि और इनके बाद बालक गिरि ने 9 वर्ष की आयु में यहां आकर अपना पूरा जीवन लगा दिया। अब उनके शिष्य कालु गिरि महाराज 2016 से मंदिर की व्यवस्था देख रहे हैं। मंदिर परिसर में ही मंदिर की गद्दी संभालने वाले महंतों की समाधियां भी बनी हैं। पुजारी सलोन श्याम के अनुसार पिछले कुछ वर्षों में मंदिर का विकास तेजी से हुआ है। वर्ष 2022 में नाथ मंदिरों में शामिल किए जाने के बाद मंदिर की सुरक्षा व्यवस्था भी दुरुस्त की गई है। मंदिर परिसर में राम-सीता का दरबार, शनि मंदिर, शिव विवाह की झांकी, विष्णु दरबार की झांकियां बनी हैं। मंदिर के मुख्य द्वार पर हनुमान की 51 फुट ऊंचे प्रतिमा स्थापित की गई है। मंदिर परिसर में सावन, शिवरात्रि आदि त्योहारों पर भक्तों की भीड़ उमड़ती है। मंदिर परिसर में करीब 25 संत-महंत रहते हैं।

भक्तों के लिए सीधे-सच्चे हैं बाबा अलखनाथ
पिछले 40 साल से मंदिर आने वाली 60 वर्षीय सुमन ने बताया कि बाबा अलखनाथ बहुत सच्चे हैं। जीवन में जो मांगा आज तक सब कुछ मिला है। इस उम्र में भी यहां रोजाना आती हूँ। रमेश ने बताया ठेले पर सामान बेचता था, कभी उन्नति नहीं हुई। पांच साल से बाबा के दर्शन के बाद ही काम पर जाता हूँ, अब अपनी कमाई से संतुष्ट हूँ। बाबा पर पूरा भरोसा है। मंदिर में मुस्लिमों का प्रवेश वर्जित है। अलखनाथ मंदिर के बाहर मुस्लिमों का प्रवेश वर्जित लिखा है। हालांकि मंदिर के पुजारी सलोन श्याम के अनुसार ये बातें तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए लगाया गया था। वर्तमान में मंदिर में केवल अस्माजिक तत्वों का आना मना है।



महाभारत युद्ध के उपरांत कर्ण का अंतिम संस्कार उसके वरदानानुसार श्रीकृष्ण के हाथों संपन्न हुआ।

कर्ण की पत्नी ऋषाली पति-वियोग सहन न कर सकी और सती हो गई। इधर वृषकेतु ने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने का संकल्प लिया, परंतु सम्राट युधिष्ठिर ने सत्य स्वीकार करते हुए कर्ण को अपना बड़ा भाई घोषित किया और वृषकेतु को स्नेहपूर्वक इंद्रप्रस्थ का अधिपति बना दिया। वृषकेतु ने बाद में अर्जुन के साथ कई सैन्य अभियानों में भाग लिया। कुंती द्वारा कर्ण जन्म का रहस्य छिपाए जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने अपनी माता को श्राप दिया कि भविष्य में कोई भी स्त्री रहस्य नहीं छिपा सकेगी। इसके पश्चात उन्होंने कुंती का त्याग कर दिया। कुंती, धृतराष्ट्र, गांधारी, विदुर और संजय वन को प्रस्थान कर गए। कहा जाता है कि कर्ण को न स्वीकार पाने का पश्चाताप कुंती को जीवनभर व्यथित करता रहा, ऐसे में वृषकेतु ने ही उनका सहारा बनकर सेवा की। एक दिन जंगल में आग लग गई और आग बहुत तेजी से फैलने लगी। आंखों में पट्टी बांधे गांधारी और धृतराष्ट्र नहीं भाग सके। जंगल की आग में जलने लगे तो उनके साथ कुंती, विदुर और संजय ने साथ नहीं छोड़ा और सभी के सभी जंगल की आग में जलकर मृत्यु को प्राप्त हुए। बाद में जब पांडव हिमालय की ओर प्रस्थान कर गए, तब इंद्रप्रस्थ का शासन वृषकेतु और हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित के हाथों में रहा। परीक्षित की मृत्यु तक्षक नाग के दंश से हुई, जिसके पश्चात उनके पुत्र जनमेजय ने नाग यज्ञ का आयोजन किया।

कैसे कहा जा सकता है गुरु

गुरु मूल रूप से वह शिक्षक नहीं है, जैसा कि हम आमतौर पर इस शब्द का प्रयोग करते हैं-यानी वह व्यक्ति जो अपने मन से ज्ञान को आप तक पहुंचाता है। ज्ञान पुस्तकों में मिल सकता है। अवधारणाएं एक ही दोपहर में समझी जा सकती हैं। गुरु के पास जो ज्ञान है, उसे न तो समझाया जा सकता है, न ही सिखाया जा सकता है। यह केवल संचारित होता है, ठीक वैसे ही जैसे एक लौ बुझी हुई मोमबत्ती को अग्नि प्रदान करती है। मोमबत्ती लौ नहीं बन जाती, बल्कि वह स्वयं ही उसी अग्नि से भीतर से प्रज्वलित हो जाती है। यही शक्तिपात है।



शिवानंद मिश्रा आध्यात्मिक लेखक

गुरु उपाय:- गुरु ही साधन हैं। एक विशेष प्रकार का अंधकार होता है, जो प्रकाश की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि प्रकाश के अस्तित्व को ही भूल जाना है। आप इसमें वर्षों, दशकों तक भी रह सकते हैं-संसार में कुशलतापूर्वक, बुद्धिमानों से, यहां तक कि कुछ क्षणों के लिए प्रसन्नतापूर्वक भी आगे बढ़ सकते हैं-फिर भी भीतर ही भीतर एक शांत, अनकहा दर्द लिए रहते हैं। एक अनुभूति कि कुछ आवश्यक चीज गायब



उसमें कुछ ऐसा होता है, जो आपको केवल जानकारी नहीं देता, आपका मनोरंजन नहीं करता या आपको सांत्वना नहीं देता-वह आपको बदल देता है। वही व्यक्ति गुरु है। और यह सूत्र-मात्र दो शब्द-'गुरु उपायः', उस बात की घोषणा करता है जिसे तर्कसंगत मन गंभीरता से लेने के लिए लगभग बहुत सरल पाता है-गुरु साधन हैं। केवल साधन नहीं। आध्यात्मिक उपकरणों के अनेक साधनों में से एक नहीं-साधन। वह स्वयं साधन। वह माध्यम, जिसके द्वारा सौई हुई आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को जागृत करती है। गुरु की आवश्यकता क्यों है? आराम ऐसी कई बातें हैं, जिन्हें आप स्वयं नहीं देख सकते, लेकिन दूसरे उन्हें स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। आंख स्वयं को नहीं देख सकती। मन अपनी कमियों को पूरी तरह से नहीं देख सकता। चेतना में एक विशेष प्रकार की गांठ होती है-वह है अपने आप को केंद्रीय मानने वाली छोटी-सी 'स्व' की गांठ, जिसे उसी हाथ से खोलना असंभव है जिसने उसे बांधा है। आपको एक दूसरे हाथ की आवश्यकता है। ऐसा हाथ नहीं, जो आपको नियंत्रित करे। ऐसा हाथ नहीं, जो आपको छोटा करे। बल्कि एक ऐसा हाथ, जो आपके विस्मृति के अंधकार में इतनी स्थिरता, इतने प्रेम और सत्य में इतनी अटूट दृढ़ता के साथ पहुंचे कि उनकी उपस्थिति में वह गांठ स्वतः ही खुलने लगे। वही हाथ गुरु है।

बोधकथा

दीपक और हवा

एक गांव में अर्जुन नाम का एक युवक रहता था। वह बहुत महत्वाकांक्षी था और जीवन में बड़ा नाम कमाना चाहता था, लेकिन हर बार जब वह कोई नया काम शुरू करता, तो थोड़ी सी कठिनाई आते ही हिम्मत हार बैठता। असफलताओं से परेशान होकर एक दिन वह गांव के एक वृद्ध गुरु के पास पहुंचा। अर्जुन ने कहा, "गुरुदेव, मैं मेहनत तो करता हूँ, लेकिन बार-बार असफल हो जाता हूँ। समझ नहीं आता कि मेरी मेहनत में कमी है या किस्मत साथ नहीं दे रही।" गुरु ने कुछ देर सोचा और उसे रात को अपने साथ बैठने को कहा। जब अंधेरा हुआ, तो गुरु एक छोटा सा दीपक जलाकर अर्जुन के सामने रख दिया। फिर उन्होंने खिड़की खोल दी, जिससे तेज हवा अंदर आने लगी। हवा के झोंकों से दीपक की लौ बार-बार डगमगाते लगी और कुछ ही क्षणों में बुझ गई। गुरु ने फिर दीपक जलाया, इस बार खिड़की बंद कर दी। अब दीपक की लौ स्थिर और शांत जलने लगी। गुरु मुस्कराते हुए बोले, "अर्जुन, क्या तुमने कुछ समझा?" अर्जुन ने कहा, "जी गुरुदेव, जब हवा तेज थी तो दीपक बुझ गया और जब हवा बंद कर दी तो वह स्थिर जलने लगा।" गुरु ने समझाया, "यह दीपक तुम्हारी मेहनत है और हवा तुम्हारी कमजोरियां-जैसे अंधेरा, डर और जट्टी पारंगनी।" अर्जुन को अपनी गलती समझ में आ गई। उसने निश्चय किया कि अब वह हर कठिनाई का सामना धैर्य से करेगा और जट्टी हार नहीं मानेगा। कुछ समय बाद वही अर्जुन अपने काम में सफल होने लगा। अब वह हर परिस्थिति में शांत और दृढ़ बना रहता था। इस कथा से सीख मिलती है केवल मेहनत ही नहीं, बल्कि धैर्य और आत्मविश्वास भी सफलता की कुंजी हैं।

